शिक्षा और ज्ञान

कृष्ण कुमार

ज्ञान आख़िर है क्या? ज्ञान को लेकर शिक्षातंत्र में एक बड़ा व्यापक भ्रम व्याप्त रहा है। कई बार लगता है कि शायद यह हाल की ऐतिहासिक विरासत का फल है कि हम इस भ्रम से अब तक निकल नहीं सके। यह व्यापक भ्रम घटने की जगह बढ़ ही रहा है और भ्रम यह है कि ज्ञान एक राशि का नाम है; ज्ञान एक प्रकार का भंडार है जो शिक्षा के ज़रिए बच्चों तक पहुंचता है और प्रौढ़ शिक्षा के ज़रिए निरक्षरों तक पहुंचता है और इस सिलसिले के चलते हम देखते हैं कि हमारे लाखों स्कूल और हज़ारों अन्य तरह के केंद्र इस राशि को आवंटित करने के अड्डे या कार्यालय बन गए हैं। अगर इस दृष्टि से देखें कि आज के समय में जो किताब सबसे ज़्यादा बिकती है यह कौन सी किताब है, जिसको हर एक नौजवान पढ़ता है, हर एक बालक पढ़ता है, या ऐसी कौन सी पत्रिका है जो सबसे ज़्यादा बिकती है, तो ऐसे प्रश्नों के उत्तर में गाहे–बगाहे अंत में आप यही कहेंगे कि ऐसी किताब या पत्रिका का नाम 'सामान्य ज्ञान' ही हो सकता है। ऐसी पत्रिका का नाम सामान्य ज्ञान देनेवाली कोई प्रतियोगिता दर्पण या प्रतियोगिता समाचार ही हो सकता है। ऐसे प्रकाशनों में तरह–तरह की जानकारी रहती है कि दुनिया की सबसे बड़ी मछली कौन सी है, सबसे छोटा पक्षी कौन सा है, मेघालय की राजधानी क्या है, अरुणाचल के मुख्यमंत्री का नाम क्या है, इत्यादि। देखते ही देखते हमारे बच्चों का जीवन अनर्गल तथ्यों का बहुत बड़ा ढेर बनकर रह गया है जिसमें कहीं बचपन का उल्लास या बचपन की स्वच्छंदता के अवशेष भी नहीं दिखाई देते। आप कहीं भी चले जाइए, गांव में शहर में या महानगर, आपको बच्चे तरह–तरह के तथ्य रटते हुए और अपने अध्यापक को सुनाते हुए दिखाई पड़ेंगे। नौजवानों में भी इसी क़िस्म की एक होड़ लगी है कि कौन कितने तथ्य याद कर सकता है। सुबह से शाम तक एक पागलपन सवार रहता है। हम इन तथ्यों को कैसे संजोएंगे? कब संजोएंगे, कहां संजोएंगे? संजोकर रखेंगे कहां? इस सबके बीच में कई बार लगता है कि ज्ञान एक ऐसी चीज़ है जो आदमी को पागल बना सकती है और आदमी को ही नहीं, पूरे समाज को पागल बना सकती है। ज्ञान ऐसी चीज़ इसलिए लगती है क्योंकि हम देखते हैं कि हमारा सबका दिमाग़ एक बड़ी भारी टेलीफोन डाइरेक्ट्री जैसा बना चला जा रहा है जिसमें असंख्य क़िस्म की सूचनाएं दर्ज हैं, लेकिन जो सवाल यूरोप के प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने कभी पूछा था कि 'मुझे क्या करना चाहिए' उसका उत्तर सूचना नाम का ज्ञान दे ही नहीं सकता। ज्ञान का अर्थ अगर सूचना या जानकारी के रूप में लिया जाए तो ज्ञान का दायरा सिमट कर एकदम छोटा हो जाता है, और और ज्ञान का अर्थ, कोई ऐसा अर्थ निकालना जिससे संतोष हो, संभव ही नहीं रह जाता। इसलिए हमें ज्ञान की पड़ताल एक ताजे मन से, खुली तबीयत से करने का प्रयास करना चाहिए। मैं कुछ छोटे–छोटे उदाहरण लेकर यह प्रयास करूंगा।

हम अपने समय की संकुल हवा में ज्ञान का एक अर्थ 'सामान्य ज्ञान' से लेते हैं। 'सामान्य ज्ञान' का अर्थ क्या है? मैं यहां एक कहानी का सहारा लेना चाहूंगा। कल्पना कीजिए कि आप एक बगीचे में टहल रहे हैं। आपके पास फालतू का समय है और आप जिस काम के लिए आए हैं, वह काम अभी शुरू नहीं हो सका है, इसलिए आप कुछ समय इस बगीचे में लगा रहे हैं। बगीचे में तरह–तरह के पेड़ हैं और उनकी छटा आपके चारों तरफ़ बिखरी है। ज्ञान का एक अर्थ यह है कि क्या आप इन पेड़ों के नामों से परिचित हैं? क्या आप जानते हैं कि किस पेड़ को क्या कहते हैं? संचार के विभिन्न पदार्थों को कोई नाम देना और फिर उस नाम से

उस चीज़ को पहचानना ज्ञान का एक बुनियादी, बहुत साधारण अर्थ है। इस अर्थ में ज्ञान हमारे लिए एक तरह का रास्ता खोलता है। अगर मैं जानता हूं कि फलाना पेड़ नीम का है तो फिर नीम के साथ के साथ जुड़े हुए मेरे जो संस्कार हैं, अनुभव हैं, वे मेरे लिए इस नाम से जुड़ जाते हैं। हम यह समझना भी शुरू कर पाते हैं कि इस वृक्ष की क्या विशेषताएं हैं। इस वृक्ष का यहां पर होना यहां के वातावरण के बारे में क्या दिखाता है? वातावरण कैसा है तो उसका एक तरीक़ा यह है कि हम देखें कि यहां कैसा पेड़ उग रहा है। उस पेड़ को देखकर, उस पेड़ में एक तरह के संस्कारों के रूप में लिखी हुई जानकारी को देखकर हम यह अंदाज़ लगा सकते हैं कि यहां कैसा जाड़ा पड़ता है। कैसी गर्मी पड़ती हैं। कैसी बारिश होती है। अगर और ज़्यादा गहराई में जाएं तो किसी पेड़ को देखकर यहां तक बता सकते हैं कि इस पेड़ के ऊपर इसके बचपन से लेकर अभी तक क्या–क्या बीती है। क्या कभी किसी ने पेड़ को आहत करने का प्रयास किया है? पेड़ की आयु कितनी है और यह आयु किस तरह की जलवायु में बीती है? किस तरह की मिट्टी में उपजा है? एक पेड़ को देखकर आप बहुत सारी बातें जान सकते हैं, बशर्ते कि हम उस पेड़ की ज़िंदगी के तमाम स्तर, एक–एक करके छूते चले जाएं। जितने स्तर आप छूते चले जाएंगे, उतना ही उस पेड़ के संबंध में आपका ज्ञान गहरा होता चला जाएगा। एक बगीचे में जहां अनेक पेड़ लगे हुए हैं उस बगीचे से एक फाटक से निकल जानेवाला व्यक्ति इस तमाम ज्ञान को, जो कि हर एक पेड़ में उसकी जीवनी के रूप में अंकित है और उसकी सारी की सारी प्रजातिगत और व्यक्तिगत दोनों ही तरह की विशेषताओं को समेटे हुए हैं, उस सारे ज्ञान को नहीं पाता। ऐसा कोई स्थान ही नहीं है जहां ज्ञान के ये तमाम स्तर इर्द–गिर्द छिपे हुए न हों। उनको एक–एक स्तर करके उभारने या छूने की क्रिया से गुज़रना ही जानने का कर्म है। हमने जगत् के स्तरों तक पहुंचकर उन तमाम निहित अनुभवों को फिर से जाग्रत किया या नहीं किया, यह तय करेगा कि कोई अनुभव हमारे लिए ज्ञान बना है कि नहीं।

शब्द के रूप में 'अनुभव' कई बार भ्रम का विषय बनता है। इस शब्द की मीमांसा करना ज़रूरी है। शब्दशः अनुभव का अर्थ है कि वह भाव जो कि होने के बाद रह जाए। जब कोई घटना घट चुके तो उस घटना से गुज़रने की वज़ह से हमारे चित पर पड़ने वाली छाप अनुभव है। इस अर्थ में अनुभव विश्व की हर वस्तु में निहित है, चाहे वह जीवित हो या नहीं। अगर वह जीवित है तो उसके शरीर पर उन अनुभवों की छाप अंकित होगी जिसे पढ़कर हम उन अनुभवों को समझ सकते हैं। किसी मनुष्य के चेहरे पर अंकित भावों और अनुभव की खरोंचें देखकर हम अंदाज़ लगा सकते हैं कि वह समाज के किन अनुभवों से गुज़रा होगा। हम सोचते हैं कि शायद निर्जीव वस्तुओं पर ऐसे चिह्न नहीं होते। लेकिन सच यह है कि निर्जीव वस्तुओं का भी अपना एक संपर्क संसार होता है। दरअसल किसी निर्जीव वस्तु की तुलना किसी अन्य निर्जीव वस्तु से नहीं की जा सकती। क्योंकि हर निर्जीव वस्तु का संपर्क जगत् अन्य निर्जीव वस्तुओं के संपर्क जगत् से अलग होगा। उदाहरण के लिए हम यह फाउंटेन पेन लें। यह निर्जीव वस्तु हैं लेकिन यह जिन–जिन व्यक्तियों के हाथ में रहा है यानी जिस अनुभव से अभी तक यह गुज़रा है, वह इसका विलक्षण अनुभव है। वह इस पेन को अद्वितीय बनाता है, कोई और पेन उसी निश्चित जीवन यात्रा से नहीं गुज़रा है जिससे वह पेन गुज़रा है। फ़र्क़ यह है कि इन पेन के शरीर पर या इसकी ऊर्जा में ऐसा कोई निश्चित अनुभव नहीं है कि हम इसको देखकर कह सकें कि यह अनुभवों से गुज़रा है। लेकिन यह बहुत संभव है कि यही एक साधारण सा पेन किसी व्यक्ति के लिए किसी विशेष क्षण में ऐसी चीज़ बन जाए जो उसको एक नए ही भाव जगत् में पहुंचा दे। हम देखते हैं कि हमारे जीवन में ऐसी अनेक वस्तुएं होती हैं जिनको देखकर, छूकर या कहीं पड़ा हुआ पाकर हमारे मन में अचानक भाव उमड़ने लगते हैं। ऐसा क्यों होता है? हम किसी कमरे में पहुंचकर स्मृतियों में खोज जाते हैं। किसी तस्वीर को देखकर उससे जुड़े हुए तमाम भाव हमारे मन में आने लगते हैं और हम कई बार एक ऐसी स्थिति में पहुंच जाते हैं जहां हम सामान्य जीवन जीते हुए भी नहीं पहुंच पाते। ऐसा क्या होता है इन निर्जीव वस्तुओं में जो कभी–कभी हमें ऐसे विशिष्ट अनुभव जगत् में पहुंचा देता है? अगर हम इस प्रश्न

का उत्तर किसी भी निर्जीव वस्तु से जुड़े हुए ऐसे अनुभव पर विचार करके ढूंढना चाहें तो बहुत सहज उत्तर हमें मिलेगा कि ऐसी निर्जीव वस्तु दरअसल हमारे लिए प्रतीक हो उठती है और प्रतीक बनकर जुड़ा हुआ होता है। दूसरे व्यक्ति को ठीक–ठीक वैसा ही अनुभव वह प्रतीकों को नहीं दे पाता जो किसी एक व्यक्ति को देता है। सामूहिक मन में जमे प्रतीकों की बात इससे मिलती–जुलती है। किसी दूसरे समाज को या किसी दूसरी संस्कृति में जीनेवाले व्यक्ति को एक प्रतीक वैसा अनुभव नहीं दे पाता है जैसा कि वह हमें देता है। लेकिन हम देखते हैं कि मनुष्य के ज्ञान का एक और प्रमुख मार्ग प्रतीकों में से होकर गुज़रता है। हम किसी अन्य देख के झंडे को देखकर किन्हीं भावनाओं से भर नहीं उठते। अगर हमारे सामने ब्राजील का झंडा फहरा दिया जाए तो हमारे मन में वह कोई भावनाएं नहीं जगाएगा। लेकिन उस देश का कोई व्यक्ति उस झंडे को फहराए जाते हुए देखे तो उसके समाज और उसके देश की संघर्ष यात्रा से जुड़ी हुई स्मृतियां अचानक उसको घेर लें। और ख़ास तौर से तब जबकि वह विदेश में हो। किस वस्तु के साथ कौन सा प्रतीक जगत जुड़ा हुआ है यह जानना भी ज्ञान की एक और लंबी धारा है। अगर इस दृष्टिकोण से देखें तो ऐसी कोई वस्तु या स्थान ढूंढ़ना संभव नहीं है जिसमें प्रतीक बनने की संभावना न छिपी हो।

प्रश्न यह है कि हम वस्तुओं के इस अतीत जगत् में प्रवेश कर पाते हैं या नहीं। प्रतीक बनाना मनुष्य का सहज स्वभाव है जो हमारे जीवन के आरंभिक समय में विकसित होने लगता है। एक छोटा बालक चूड़ी या चप्पल देखकर अपनी मां की कल्पना करने में समर्थ हो जाता है। सारे जीवन यह क्षमता हमारे पास रहती है। इस क्षमता के ज़रिए हम अपने साधारण अनुभवों को भी बहुत गहरे स्तर तक जीने में समर्थ हो जाते हैं बशर्ते कि हम अपने आसपास बिखरे हुए संसार में छिपे प्रतीकों की आवाज़ों को सुनते रह सकें। उनके संपर्क में रहने का समय, धैर्य और कभी–कभी हौसला हमारे पास हो तो यह संभव रहता है कि हम प्रतीकों में छिपे हुए इस तमाम ज्ञान को अपने जेहन में ला सकें।

ज्ञान का एक और अर्थ है जो कई बार सहज दो मनुष्यों के मिलने में प्रकट होता है। मैं आपको एक संक्षिप्त सी घटना सुनाता हूं जिसके ज़रिए ज्ञान का यह अर्थ आपको बड़ी आसानी से समझ में आ जाएगा। पिछले वर्ष लगभग यही तारीख़ थी। मकर संक्रांति के एक दिन बाद की तारीख़। मैं मध्य प्रदेश स्थित अपने घर से लौट रहा था और जिस स्टेशन से मुझे दिल्ली की ट्रेन पकड़नी थी, वहां बहुत रोशनी नहीं थी। शाम थी। कोहरा स्टेशन पर छाया हुआ था। गंदगी प्रायः रहती है जिसे आप स्पष्ट नहीं कह सकते कि यह अव्यवस्था है या एक सामान्य व्यवस्था है। उस सबके के बीच मैंने देखा कि बेंच पर मेरे पास बैठी हुए एक स्त्री अपने आंचल में कोई चीज़ छिपाए है जो जीवित है। मेरी आंखें तेज़ नहीं हैं और जितनी हैं थोड़ी बहुत, वह और भी ख़राब हो जाती हैं जब इतनी ख़राब रोशनी हो। मुझे थोड़ी सी उत्सुकता हुई, पर यह सोचकर कि अब इस बात को जानने को मेरे पास कोई अच्छा साधन नहीं है कि यह क्या चीज़ है, मैंने अपनी उत्सुकता को दबा लिया और गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद उस औरत के पल्लू में से उस जीवित चीज़ ने जब थोड़ी सी हरकत की तो मेरा ध्यान फिर उधर गया और अबकी बार मैंने बहुत कम रोशनी के बावजूद यह ताड़ लिया कि इस औरत के आंचल में छिपी हुई चीज़ हो न हो, एक छोटी से बिल्ली को छिपाए हुए हो यह एक सामान्य स्थिति नहीं है। इसलिए अबकी बार मैं अपनी उत्सुकता को और नहीं टाल सका और मैंने उस औरत से यह जानने की इच्छा व्यक्त की, कि यह बिल्ली कहां से लाई है और कहां जे जा रही हो। उसने काफ़ी देर तक मेरी तरफ़ देखा जैसे वह यह निश्चय नहीं कर पा रही हो कि इस प्रश्न का उत्तर ठीक से दे या जो परिस्थितिवश दिया जाना चाहिए, उसे देकर इस अजनबी व्यक्ति को दूर ही रखे। लेकिन मैं उसकी तरफ़ उत्सुकतावश देखता रहा। अंत में उसने कहा कि यह बिल्ली को वापस इंदौर ले जा रही है। मैंने जानना चाहा कि उसे वह इंदौर क्यों लाई थी। इंदौर से टीकमगढ़ एक ख़ासी दूरी है। सारी रात एक बस चलती है जिसमें 96 रुपए टिकट लगता है। जाड़े की रात में बिल्ली के साथ इस सफ़र को उस औरत ने तय किया होगा और अब वह फिर 60

रुपए ख़र्च करके ट्रेन पकड़कर इंदौर पहुंचेगी। उसकी यात्रा की पूरी योजना, और वह भी एक बिल्ली के साथ, मुझे चौंका गई। आज के ज़माने में एक बच्चे के साथ यात्रा करना भी कष्टप्रद है, तो आप सोच सकते हैं कि बिल्ली के साथ यात्रा करने में कितनी तकलीफ़ होती होगी। इसलिए मैंने इस प्रसंग को पूरी तरह जान लेना उचित समझा।

ज्ञान का यह एक आयाम है कि हम अपने साथ जीते हुए मनुष्य को कितना जाने या कितना न जानें, बहुत कुछ हमारे ऊपर निर्भर होता है। बहुत लंबे समय तक किसी व्यक्ति के साथ जीते हुए भी कई बार हम यह प्रयास सफलतापूर्वक कर ले जाते हैं कि हम उसे एक सीमा से आगे न जानें। अपने आसपास के लोगों को बहुत ज़्यादा जान लेना भी एक प्रकार बोझ जैसा बन सकता है। इस तरह की ज़िम्मेदारी इस ज्ञान के हर एक स्तर से हमारे ऊपर बढ़ती जाती है। हम अपने साथ काम करनेवाले व्यक्ति को जितना जानेंगे, उतनी ही ज़्यादा हमारी ज़िम्मेदारियां उस व्यक्ति के प्रति बढ़ती चली जाएंगी। शायद इसी को लेकर बहुत से लोग अपनी पत्नी को भी बहुत ज़्यादा न जानने पर ज़ोर देते हैं। बहुतेरे लोग चाहते हैं कि बच्चों के मामले में न पड़ें क्योंकि उनको लगता है कि यदि एक बार ये बच्चों के मामले में पड़ तो बहुत सा समय उनको इसी में लगाना पड़ेगा। इसलिए हम अक्सर सुनते हैं कि बच्चो, अपना झगड़ा, अपने आप निपटा लो। हमारे आसपास हर मनुष्य के रूप में इतिहास का, अनुभव का, बहुत ही तरल सागर लहराता है, हम उसमें से जितना उचित समझते हैं उतना ही ध्यान में लाते हैं। बाक़ी उस मनुष्य के लिए छोड़ देते हैं कि वह अपने अंदर का संसार स्वयं संभाले। कभी–कभी ऐसा होता है कि हम एकाएक अपने किसी निकट संबंधी के बारे में कोई नई जानकारी वर्षों के बाद पाते हैं या हम अपने ही परिवार के एक सदस्य के बारे में उसकी मृत्यु के बाद जान पाते हैं। अपने पिता को लेकर हमारी बहुत सी जिज्ञासाएं तभी शमित होती हैं जब पिता इस संसार में नहीं रहते। यह कोई असाधारण सत्य नहीं है। हर व्यक्ति इस सत्य को अपने स्तर पर महसूस करता है जब अपने पिता की मृत्यु के कई वर्ष बाद वह अपने पिता के कई व्यवहारों का आधार आत्मीयता के साथ समझ पाता है।

मनुष्यों के अंतर्संबंधों से उपजे हुए संसार में कभी–कभी ऐसे क्षण आते हैं जब हम जान ही लेना चाहते हैं कि दूसरे में क्या है? मंशा का अंदाज़ लगाने की उत्सुकता हमारे मन में पैदा होती है। ऐसा ही हुआ जब मैंने उस स्त्री से यह जानना चाहा कि वह इस बिल्ली को क्यों लाई थी और वह अब इसको क्यों वापस इंदौर लिए जा रही थी। इसके उत्तर में जो बात उसने मुझे बताई, शायद वह इस पूरे प्रसंग का महत्त्वपूर्ण पहलू नहीं है। सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू क्या है, यह मैं अभी ख़ुद नहीं समझ पाया हूं। शायद यह जानने की इच्छा ही सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू थी। लेकिन कुछ न कुछ मूल्य तो उसकी बताई बात का मेरे लिए था ही और आज तक है जब मैं यह कहानी सामने दोहरा रहा हूं। आप समझ सकते हैं कि उस क्षण जब ये बात उसने मुझे बताई होगी, तब मैं कितना चौंका हूंगा। उसने मुझे बताया कि 92 में दिसम्बर के महीने में जो दंगे इंदौर में हुए, उन दंगों की वज़ह से बहुत से लोगों को अपना मुहल्ला छोड़ना पड़ा जहां वे वर्षों से रहते आ रहे थे। उसी समय इस स्त्री को, जो मुसलमान थी, अपना घर छोड़कर अपने रिश्तेदार के यहां टीकमगढ़ में शरण लेनी पड़ी। उसके लिए यह समझना मुश्किल था कि इस बिल्ली को वह अकेला छोड़कर कैसे चली जाए। इसलिए उसके साथ जाड़े की रात का सफ़र तय करके, सौ रुपए खर्च करके वह बिल्ली को टीकमगढ़ ले गई और जब दंगे शांत हो गए, जीवन अपनी सामान्य रफ़्तार पर लौट आया, तब वह वापस बिल्ली को लेकर इंदौर जा रही थी। ज्ञान का जिस तीसरे अर्थ में संधान करने का प्रयास मैं कर रहा था, वह इस प्रसंग से हो गया होगा। ज्ञान का यह तीसरा आयाम समाज के अंतर्जगत् से संबंध रखता है। हम सबके भीतर जो संसार है, जो एक दूसरे को जानने का जिम्मा हमारे ऊपर रहता है, ज्ञान का यह एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। इसको लेकर शिक्षा की भी चेष्टा को चिंतित होना चाहिए। अब मैं ज्ञान का चौथा और अंतिम आयाम लेता हूं।

इस चौथे आयाम रूप में ज्ञान को समझने के लिए मैं आपको पंचतंत्र की एक कहानी सुनाना चाहूंगा। यह कहानी आपमें से बहुत से लोगों

को पता होगी और इसका कहानी के तौर पर कोई ख़ास अर्थ भी नहीं है। जितना अर्थ है वह पंचतंत्रकार ने हज़ारों साल पहले निकाल लिया था। आज की शाम इसका कोई अर्थ है तो वह इस विवेचन के ही संदर्भ में है जो हम यहां करने का प्रयास कर रहे हैं। कहानी यूं है कि एक पेड़ में कौआ निवास करता था जो अपनी संतति के लगातार नाश से दुखी रहता था। कारण यह था कि इसी वृक्ष के कोटर में एक सांप निवास करता था। पंचतंत्र में अक्सर आप देखेंगे कि कहानियों में संकट उसी स्थान पर रहता है जहां पर कि संकट को भोगने के लिए नियति द्वारा चुना गया पात्र या व्यक्ति रहता है। संकट कोई दूर से नहीं आता है। कौआ उसी वृक्ष पर अपना दुखी जीवन व्यतीत करने की कल्पना करता रहता था। वृक्ष के कोटर में एक भयानक सांप रहता था। कौए के परिवार में जब भी संतति का सौभाग्य जन्म लेता था और इस बात की आशा कौए को बंधती भी कि मेरे बाद भी मेरा वंश चलेगा, तब–तब इस प्रयास को यह सांप नष्ट कर दिया करता था। यानी कौए के घोंसले में जब–जब अंडे दिखाई देते थे, सांप आकर उनको खा लेता था। इस कारण कौआ बहुत दुखी रहता था। अपने इस दुख का निवारण किस प्रकार करे, इस चिंता में वह इधर–उधर घूमा करता था। आज हज़ारों वर्ष बाद जब मैं यह कहानी पढ़ता हूं तो मुझे जिज्ञासा होती है कि इस कौए ने कभी दूसरे वृक्ष पर जाने का विचार क्यों नहीं किया। मेरा ख़याल है कि चिंता में पड़ा हुआ व्यक्ति किसी सहज हल को नहीं ढूंढ़ पाता। उस ज़माने में चूंकि पर्यावरण का ऐसा विनाश नहीं हुआ था, इसलिए शायद अन्य सभी वृक्षों पर पक्षियों के घोंसले रहे होंगे और इसलिए कौए को आसानी से कहीं और जाने का उपाय नहीं सूझा होगा। वह अपनी चिंता में अंदर ही अंदर घुला करता होगा कि वह अब कैसे अपने से अधिक शक्ति रखनेवाले शुत्र का विनाश करे। विनाश न भी कर सके तो कम से कम अपनी रक्षा कैसे करे। दोनों ही काम उसको असंभव प्रतीत होते थे।

कहानी कहती है कि इस दुख में एक बार उसकी भेंट उसी जंगल में रहनेवाली एक लोमड़ी से हुई और इस लोमड़ी ने उस कौए से उसके दुख का कारण पूछा। कौए ने उसको बताया कि मैं सांप से चिंतित हूं और दुखी हूं और किसी प्रकार चाहता हूं कि या तो मुझे इससे मुक्ति मिल जाए या इसका विनाश हो जाए। यानी किसी तरह से मेरे अंडों की रक्षा हो जाए। चूंकि मैं उसके सामने निर्बल हूं, इसलिए मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि मैं क्या करूं। लोमड़ी ने अपना अनुभव जगत् टटोलकर कौए को एक उपाय सुझाया और उससे कहा कि जैसा मैं कहती हूं ठीक–ठीक तुम अगर वही काम करो तो तुम्हें संकट से मुक्ति मिल सकती है। आपमें से जो लोग जानवरों से परिचित हैं, शायद समझ सकते हैं कि लोमड़ी का जगत् जंगल के निचले हिस्से में रहा करता है और कौए का जगत् पेड़ों के ऊपर रहा करता है। लोमड़ी इस बात से परिचित थी कि इसी जंगल के एक कोने में एक तालाब है और उस तालाब में प्रति सप्ताह स्नान करने के लिए पड़ोस के राज्य की एक राजकुमारी अपनी अनेक दासियों और नौकरों के साथ आती है। लोमड़ी ने इस कौए को यह सलाह दी कि जब राजकुमारी स्नान कर रही हो और उसके वस्त्र और उसके आभूषण किनारे पर पड़ें हों तो वह उन आभूषणों में एक हार निकालकर, अपनी चोंच में दबाकर अपने वृक्ष की तरफ़ उड़ने लगे। ''ज़्यादा ऊंचाई पर मत उड़ना, कम ऊचांई पर उड़ना और धीरे–धीरे उड़ना। अपने वृक्ष पर वापस पहुंचकर हार को चुपचाप सांप के कोटर में डाल देना।'' ये सारी तरकीब लोमड़ी ने कौए को बताई। संकट में पड़ा हुआ कोई व्यक्ति इतना जिज्ञासु नहीं होता कि पूछे कि इस सबसे क्या होगा? संकट में कोई व्यक्ति जैसा करता है, हम वैसा करने के लिए तैयार हो जाते हैं। कौआ भी इसी प्रकार लोमड़ी की कही हुई बात को मान गया।

सप्ताह का वह दिन आया जिस दिन राजकुमारी स्नान के लिए उस सरोवर में आती थी। उस दिन किनारे पर पड़े हुए उसके गहनों और कपड़ों में से टटोलकर कौए ने हार उठाया और उसको अपनी चोंच में दबाकर ज़मीन से थोड़ी सी ऊंचाई पर धीरे–धीरे उड़ने लगा। राजकुमारी के नौकारों ने बहुत दूर से देखा कि कौआ राजकुमारी का एक बहुत ही क़ीमती हार अपनी चोंच में लटकाए हुए उड़ा जा रहा है। वे उसके पीछे भागे। साथ में वे अपनी लाठियां लिए हुए थे। कौआ इतनी ऊंचाई पर उड़ रहा था कि वे ठीक उसके

पीछे–पीछे भाग सकें। उसके पीछे–पीछे भागते हुए वे उस वृक्ष तक पहुंचे जहां कौए ने लोमड़ी की बताई योजना के अनुसार हार को सांप के कोटर में डाल दिया और उसके बाद निश्चिंत होकर वापस पेड़ की ऊंची डाल पर, जहां उसका घोंसला था, जाकर बैठ गया। इधर नौकरों ने अपनी लाठियां कोटर के भीतर डालीं और राजकुमारी के हार को निकालने का प्रयास करने लगे। आप सोच सकते हैं कि क्या हुआ होगा। सांप बहुत उत्तेजित अवस्था में बाहर आया और नौकारों ने सांप को वहीं लाठियों से पीट–पीटकर मार डाला। इसके बाद वे इत्मीनान से राजकुमारी का हार कोटर में से निकालकर वापस राजकुमारी के पास पहुंचे। आप सोच सकते हैं कि राजकुमारी काफ़ी संतुष्ट हुई होगी जब उसको मालूम हुआ होगा कि उसका हार इस तमाम संकटपूर्ण संघर्ष से गुजर कर वापस सुरक्षित उसके पास आया है।

पंचतंत्र की इस कहानी पर अब आप इस दृष्टिकोण से विचार कीजिए कि इस कहानी की मुख्य घटना में जितने पात्र शरीक हैं, इनमें से कितने पात्रों को यह मालूम है कि वे इसमें क्यों शरीक हैं। इस कहानी में पात्र हैं कौआ, सांप, लोमड़ी, नौकर राजकुमारी और दासियां। अब यह भी सोचें कि इस कहानी की प्रमुख घटना कौन सी है। इस कहानी की प्रमुख घटना यही है कि एक सांप कोटर में से निकाला जा रहा है और कोटर से निकाले जाने के बाद लाठियों से मार डाला जाता है। इस घटना के कारण ही उस समस्या का निदान होता है जिसके साथ यह कहानी शुरू हुई थी। यानी कौए की कहानी यह कि संतति नाश दुख किसी प्रकार दूर हुआ। इस समस्या का निदान उपर्युक्त नाटकीय घटना के ज़रिए होता है। आप इस पर विचार करें कि इस कहानी के जगत् में ऐसे पात्रों की संख्या कितनी है जो इस घटना में अपने शामिल होने का कारण जानते हैं। अगर आप इस दृष्टिकोण से केंद्रीय घटना पर विचार करें तो इस कहानी में ऐसा एकमात्र पात्र लोमड़ी है; बाक़ी जितने पात्र हैं वे सबके सब इस घटना में शरीक हैं, लेकिन क्यों शरीक हैं और अपनी–अपनी भूमिकाएं क्यों निभा रहे हैं, इस बात से वे अवगत नहीं है। इस जगत् में उनको जो कर्तव्य दिया गया है, उसका निर्वाह वे किए चले जा रहे हैं। क्यों कर रहे हैं, क्या कर रहे हैं। यह उनको नहीं पाता। यहां तक कि कौए को भी नहीं मालूम है यद्यपि वह इस कहानी का नायक है। नायक से यह अपेक्षा की जाती है, साहित्य में प्राचीनकाल से की जा रही है कि कम से कम नायक को तो मालूम होना चाहिए कि वह क्या कर रहा है। क्यों कर रहा है? लेकिन हमारी कहानी में नायक को नहीं मालूम कि वह एक नहाती हुई राजकुमारी का हार लेकर क्यों उड़ रहा है? कुछ कम ऊंचाई पर क्यों उड़ रहा है? उस हार को लेकर कोटर में क्यों डाल रहा है?

अब इस कहानी के खलनायक पर विचार करें। क्या उसे खलनायक कहा जाए? इस कहानी के अंतर्जगत् में प्रवेश करें तो यह स्पष्टः नहीं रह जाता कि खलनायकत्व क्या है। यह कहानी इस अर्थ में बहुत आधुनिक कहानी है। जब नायक और खलनायक का भेद खो जाए तो समझना चाहिए कि आधुनिक काल आ गया। नौकर सांप को लाठियों से मार रहे हैं। एक जीवित प्राणी की हत्या कर रहे हैं। उनको स्वयं नहीं पता कि हम ऐसा क्यों कर रहे हैं। दरअसल थोड़ा बहुत तो उनको पता कि हम इसलिए कर रहे हैं जिससे यह हार हमारी राजकुमारी के पास पहुंच जाए। लेकिन जो उनको पता है, वह अर्द्धसत्य है, यह अधूरा ज्ञान है। वे जिसे निमित ऐसा कर रहे हैं, यह उनको नहीं पता है। कठोर शब्दों में कहें तो हम कह सकते हैं कि प्रसंग यह है कि कौन उनको इस्तेमाल कर रहा है और क्यों कर रहा है। आज की भाषा में कहें तो अपना उल्लू सीधा करने के लिए कोई उनका उपयोग कर रहा है जो उनका इस्तेमाल कर रहा है, उसका वास्ता सिर्फ़ इतना ही है कि उसका काम हो जाए। इसके बाद ये कमबख़्त जो चाहें करें। ये नौकर अपने कर्म जगत् के निश्चिंत निवासी इस कहानी में जो सबसे सक्रिय हैं, यानी सिर्फ़ सोचनेवाले प्राणी नहीं हैं, बल्कि कर्मठ हैं वही नौकर हैं। उनको नहीं पता है कि वे किसी ख़ातिर, किन मूल्यों की ख़ातिर, किन उद्देश्यों के ख़ातिर, किन समस्या के ख़ातिर अपनी दुर्दांत सक्रियता प्रदर्शित कर रहे हैं। काम कर रहे हैं और सफलतापूर्वक कर रहे हैं। काम करके चले जाते हैं। अब राजकुमारी पर विचार करें तो हम और ज़्यादा उदासी में खो जाते हैं। उसी के हार का इस्तेमाल यानी सरोवर में आने की

घटना के कारण कहानी बन सकी। अपना पूरा योगदान बग़ैर कोई श्रेय लिए हुए राजकुमारी निभाती है। नौकरों को कम से कम कुछ श्रेय मिलता है कि उन्होंने कुछ किया, लेकिन राजकुमारी को क्या मिला! कुछ नहीं मिला। राजकुमारी इस विराट कारण–परिणाम–शृखंला के जगत् में अपनी भूमिका निभाकर खो जाती है।

इस कहानी में एक ही पात्र है जो कहानी में शामिल सारे घटना–चक्र से परिचित है। आप देख सकते हैं कि उस पात्र के प्रति मेरी इज़्ज़त क्यों है। वह एक निष्क्रिय पात्र है, जिसको आप चाहें तो बुद्धिजीवी कह लीजिए, जो इस नाते कि उसको मालूम है कि किस चीज़ का संबंध कहां बिठाया जा सकता है और किस समस्या का निदान किससे करवाया जा सकता है। केवल इस ख़ातिर वह एक ख़ास स्थान इस कहानी में ग्रहण किए हुए है। उसकी ही योजना है जिसके तहत तमाम पात्र अपना–अपना काम करके अपने सामान्य जीवन में लौट जाते हैं, सिवाय सांप के जिसका सामान्य जीवन यह चिंतनशील पात्र समाप्त ही करवा देता है।

लोमड़ी के दृष्टिकोण से सोचें–यानी आप इस लोमड़ी को केंद्र में रखकर सोचें तो आप देख सकते हैं कि ज्ञान क्यों सृष्टि के आरंभ काल से ही शक्ति का पयार्य माना गया है। ज्ञान में कौन सी शक्ति है? ज्ञान क्यों शक्ति है? और ज्ञान को लेकर, ख़ास तौर से ज्ञान के उत्पादनों को संजोने के सवाल पर आरंभ काल से ही समाज व्यवस्थाओं में हमेशा गहरी चिंता और उठापटक जारी रही है। अगर आप इस बात को बहुत सरल दृष्टांत से समझना चाहें तो आप लोमड़ी के इस वैध वर्चस्व पर ग़ौर करें जिसके कारण कौआ उसके पास जाता है, अपना दुख उसको सुनाता है। उस दुख का निदान बग़ैर अपना हाथ हिलाए हुए लोमड़ी जिस प्रकार कर देती है, उससे आप समझ सकते हैं कि ज्ञान का इस्तेमाल करने की क्षमता और सही ज्ञान को सही स्थान पर मुहैया कराने की क्षमता को आरंभ काल से ही क्यों इतना महत्त्व दिया गया है।

हम अपने समय में देखते हैं कि विश्व का सबसे शक्तिशाली देश जिसके पास इस धरती को एक दिन में सैकड़ों बार ख़त्म कर देने की शक्ति है, यानी संयुक्त राज्य अमरीका आज हमारे देश पर इसके लिए दबाव डाल रहा है कि जो ज्ञान–सामग्री अमरीका में पैदा की गई है उसके कॉपीराइट को हमारा देश माने। क्या कारण है कि इतना शक्तिशाली देश ज्ञान के कॉपीराइट को लेकर इतना चिंतित है, इतना व्यग्र है। इसका कारण समझने के लिए आप पंचतंत्र की इस कहानी पर ग़ौर करें। कहानी दिखाती है कि शक्ति तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक उस शक्ति के साथ ज्ञान और ज्ञान को अपने नियंत्रण में रखने का कोई उपाय न आ जाए। ज्ञान का यह बड़ा महत्त्वपूर्ण आयाम है कि वह किन परिस्थितियों में शक्ति का पर्याय बनता है। इसी कारण ज्ञान के क्षेत्र में सदैव से एक प्रकार की प्रतियोगिता रही है। कौन सा ज्ञान वर्चस्व का कारण बनेगा और कौन सा ज्ञान दुरदुरा दिया जाएगा। हर युग में यह प्रतियोगिता अलग–अलग रूपों में चलती है। जो ज्ञान कल तक वैध या महत्त्वपूर्ण ज्ञान था, आज के प्रतियोगिता के युग में वह अवैध बन जाए और अवैध ही नहीं, अज्ञान का पर्याय बन जाए। वैसी स्थिति में उस ज्ञान से लैस व्यक्तियों को अज्ञानी घोषित कर दिया जाएगा। हम अपने ही समय में देखते हें कि तरह–तरह का ज्ञान जो कि आज से 50 या 100 वर्ष पूर्व किसी व्यक्ति को ज्ञानी कहलाने का अधिकार देता था, आज उस व्यक्ति की ग़रीबी को भी दूर नहीं कर सकता।

यह सही समय है जब हम लोग शिक्षा की तरफ़ बढ़ें क्योंकि शिक्षा का तंत्र ही वह साधन है जिसके ज़रिए ज्ञान की विभिन्न धाराओं के बीच प्रतियोगिता को एक सामाजिक आकार मिलता है। शिक्षा एक प्रकार से ज्ञान की कुछ धाराओं को वैध और कुछ अन्य धाराओं को अवैध बना देती है। इतना अवैध बना देती है कि वे धाराएं शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश ही नहीं कर पातीं। उनका होना न होना या कि किसी के द्वारा ज्ञान की उन धाराओं का जाना जाना उनके लिए व्यर्थ बन जाता है।

शिक्षा की तरफ़ बढ़ने की इस कोशिश में एक क्षण के लिए रुककर मैं उस व्यक्ति पर अपना ध्यान करूंगा जो शिक्षा की प्रक्रिया में केंद्रीय स्थान पर बैठा हुआ है। अगर शिक्षा की प्रक्रिया का सहज अर्थ है सीखना और उसका दूसरा आयाम है सिखाना तो इस प्रक्रिया में केंद्रीय स्थान पर वह व्यक्ति बैठा हुआ है

जो सिखाता है। यह व्यक्ति है शिक्षक और उसकी भूमिका बहुत जटिल है। इस भूमिका को बहुत अच्छी तरह उसकी जटिलता के साथ न्याय करते हुए बुद्ध ने समझा था। बुद्ध के दर्शन में इस बात को केन्द्रीय स्थान दिया गया है कि शिक्षक अपनी बात शिक्षार्थी तक कैसे पहुंचाए। जो रूपक बौद्ध दर्शन में इस प्रक्रिया की जटिलताओं की ओर इशारा करने के लिए इस्तेमाल किया गया है, वह ज्ञान का रूपक है। ज्ञान एक ऐसी गाड़ी है जो हमें किसी अवरोध, जैसे नदी, को पार करने में हमारी मदद करती है। हवा भी एक अवरोध है, लेकिन वायुयान जैसी चीज़ बौद्ध दर्शन में एक रूपक के रूप में हमारी मदद नहीं कर सकती। यहां तो यान का एक पुराना ही रूपक लेना होगा। नाव एक ऐसा यान है जो नदी को पार करने में हमारी मदद करता है। जो रूपक उभरता है वह नदी के दो तटों का है।

इस तट पर यानी इधर सीखनेवाला भी बैठा है और शिक्षक भी। दोनों इस रूपक में इस तट पर हैं। जिस दृश्य का बयान शिक्षक करना चाहता है या जिस दृश्य के बारे में वह अपने शिष्य को सिखाना चाहता है वह दृश्य है नदी के उस पार का दृश्य। नदी इतनी चौड़ी है कि उस पार आसानी से देखा नहीं जा सकता। उस पार पहुंचकर ही पता लगता है कि उस पार क्या है। इस रूपक में समस्या यह है कि जो व्यक्ति उस पार हो आया है, उस व्यक्ति के लिए यह कठिन हो जाता है कि वह ऐसे व्यक्तियों के साथ अपना रिश्ता कायम करे जो अभी उस पार नहीं हो आए हैं। शिक्षक के ऊपर बड़ी ज़िम्मेदारी डाली गई है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो उस पार के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी रखता है। वह उस पार हो आया है। ऐसा नहीं है कि वह उस पार गया तो फिर उस पार ही रह गया। ऐसे व्यक्ति भी समाज में होते हैं और बहुत से लोग होते हैं, लेकिन वे शिक्षक नहीं होते। वे उस पार ही रह जाते हैं। इस पार से उनको समझाना शेष संसार के लिए एक प्रकार की चुनौती बन जाता है। हम ऐसे अनेक लोगों की सूची बना सकते हैं जो उस पार से नहीं लौटे या उस पार पहुंचने के बाद उस पार के हो गए। डॉक्टर और इंजीनियर ऐसे ही लोग है। वे हमारे बीच रहते हैं, पर अपना ज्ञान अपने पास रखते हैं उसका प्रयोग करते हैं, पर उसे किसी से बांटते नहीं।

बालक को यह सुविधा प्राप्त नहीं है कि वह उस पार अभी हो आए। उसे शिक्षक का सहारा लेना होता है। शिक्षक एक ऐसा व्यक्ति है जो उस पार के बारे में जानता है, लेकिन उस पार ही नहीं छूट गया। उसके पास एक नाव है जिसको वह दोनों तटों के बीच संपर्क बनाए रखने के लिए इस्तेमाल करता है। एक नाविक होने के नाते उसके ऊपर एक भारी ज़िम्मेदारी आती है। ज़िम्मेदारी यह है कि वह उस पार के दृश्य का महत्त्व कम किए बग़ैर और उस पार की विलक्षणता घटाए बग़ैर उन शिक्षार्थियों को, जो उस पार नहीं गए, इस बात से परिचित करा सके कि उस पार क्या है। यह ज़िम्मेदारी बहुत जटिल तब हो जाती है जब, जिन लोगों के बीच वह काम कर रहा है, उनका अनुभव जगत् बहुत सीमित हो जैसे कि बालकों का। उनके लिए उस पार की दृश्यावली बहुत जटिल है। बहुत सारी चीज़ें हैं जो वे नहीं जानते। ऐसी स्थिति में शिक्षक के सामने जो विकल्प उभरते हैं यही हैं कि या तो वह उनको उन दृश्यों के प्रति आकर्षित करे और अपनी नाव में बिठाकर वह उनको उधर जाने के लिए प्रेरित करे या उन दृश्यों के बारे में ऐसा विवरण दे कि शिक्षार्थी बगैर वहां जाए हुए बहुत कुछ समझ लें कि वहां क्या है, अर्थात् शिक्षक से मिली समझ के आधार पर उस तट की जानकारी से प्रेरित महसूस करें। सबमें बड़ी समस्या यही है कि उस तट की विलक्षणता के साथ अन्याय न हो।

उस तट पर जो कुछ दिखाई देता है वह महत्त्वपूर्ण है ही इसलिए कि एक बार जब उस तट को व्यक्ति देख लेता है तो वह एक तरह से बदल जाता है। अगर वह इस तरह से बदले नहीं, उसका रूपांतरण न हो जाए तो फिर दूसरे तट का महत्त्व ही क्या रहा। उस तट का अनुभव मनुष्य को बदल डालता है। लेकिन इसके बाद इसी मनुष्य की शिक्षक की भूमिका में उन लोगों के साथ संपर्क स्थापित करना होता है जो इस प्रक्रिया से गुज़रे हुए नहीं हैं। उन लोगों यानी छात्रों से संपर्क स्थापित करने की उसकी क्षमताएं एक बड़ी चुनौती का सामना करती हैं। इस प्रकार से रूपांतरित हुआ मनुष्य, जो ज्ञान के ज़रिए एक नए स्तर पर पहुंच चुका हो फिर कैसे ऐसे लोगों के साथ जुड़े रहे जिनके

पास वह ज्ञान नहीं है? सबसे बड़ी चुनौती इस प्रक्रिया में यही है कि वह लोगों के साथ न अन्याय करे और न ज्ञान के साथ रोज़मर्रा के जीवन में साधारण से साधारण शिक्षक के मन में यही प्रश्न पैदा होता है कि जो कुछ मैं जानता हूं वह जिस संबंध चक्र से जिस तमाम व्याख्या जगत् से बंधा हुआ है, उस व्याख्या जगत् को इकट्ठा किए बिना कैसे मैं अपने इस ज्ञान को बच्चों तक पहुंचाऊं। उस व्याख्या जगत् को अगर संपूर्णतः प्रस्तुत करना संभव होता, तो शिक्षक का कामकाज आसानी से हो सकता था। दिक़्क़त यही है कि एक विकासमान बच्चे के सामने वह व्याख्या जगत् पूरी तरह से इकट्ठा नहीं उभारा जा सकता। कोई चीज़ क्यों महत्त्वपूर्ण है यह इकट्ठा नहीं बताया जा सकता। फिर भी उस चीज़ को जानना ज़रूरी है। उस व्याख्या जगत् से अलग करके कोई विशेष जानकारी कैसे दी जाए? एक विकासमान बच्चे के स्वभाव को, उसकी स्वाभाविक इच्छाओं को जो कि स्वच्छंद है, व्यक्त करने का मौक़ा देते हुए उस ज्ञान को प्राप्त करने की प्रक्रिया से कैसे गुज़ारा जाए। हर शिक्षक के सामने यह चुनौती रहती है। इस चुनौती में एक विशेष जटिलता है। ज्ञान का एक विशिष्ट रूप है जिसका ज़िक्र मैंने आपसे पहले नहीं किया। ज्ञान का एक हिस्सा है जो अकथ है। यानी कहकर नहीं बताया जा सकता। ज्ञान के जिन आयामों पर हमने पहले विचार किया वे किसी न किसी प्रकार कहे जा सकते हैं। कहानी की शक्ल में, व्याख्या, विवेचना या वर्णन की शक्ल में, लेकिन ज्ञान का एक अकथ पक्ष भी है। परिस्थिति देखिए कि ज्ञान का यह अकथ रूप ही सबसे पहले प्रकट होता है। यह अकथ ज्ञान क्या है? अकथ ज्ञान है वह ज्ञान जो किसी भी कौशल में शरीक होता है। मान लीजिए हम साइकिल चलाना सीख रहे हैं। साइकिल चलाने की प्रक्रिया में जो ज्ञान काम आता है, अगर आप इस ज्ञान का विश्लेषण करना शुरू करें तो यह ज्ञान इतना जटिल साबित होगा कि अगर उस ज्ञान को एक बार देना शुरू किया जाए तो दुनिया का कोई आदमी साइकिल चलाने के लिए मानसिक रूप से अपने आप को तैयार नहीं कर सकेगा। किस तरह साइकिल में संतुलन बना रहता है और आदमी जब एक तरफ़ गिरने को होता है तो साइकिल को किस तरह दूसरी तरफ़ झुकाया जा सकता है, साइकिल में निहित यह संतुलन एक सूक्ष्म अकथ ज्ञान है। साइकिल इस अर्थ में हमारे समय की संसदीय राजनीति है, उससे कम जटिल नहीं है। कब किस तत्त्व को, किस तरफ़ से आती हुई शक्ति को दूसरी तरफ़ से एक और शक्ति लाकर निरुपाय कर देना है। यह ज्ञान साइकिल को संतुलित रखने जैसा ही है। इस ज्ञान का सतत इस्तेमाल करते हुए ही हम साइकिल पर बने रहते हैं और धराशायी नहीं होते। अगर आप किसी भौतिक विज्ञानी से कहें कि वह साइकिल चलाने की प्रक्रिया में शामिल भौतिकी के नियम समझा दे, तो उसे एक लंबी–चौड़ी विवेचना करनी पड़ेगी। उस विवेचना को पढ़कर अगर आप किसी बच्चे को साइकिल चलाने के लिए प्रेरित करें, कोई नचिकेता ही होगा जो कहेगा कि हां, मैं भी साइकिल चलाना चाहता हूं।

ठीक ऐसा ही मामला भाषा का है। अगर आप इस बात की विवेचना करना आरंभ करें कि हम कैसे बोलते हैं या कि अपने आसपास बोली जाती हुई ध्वनियों को सुनकर उनका एक ख़ास विन्यास अपने मानस में कैसे रचते हैं और उसके बाद कैसे उस विन्यास को इतना लचीला बना लेते हैं कि हम उस विन्यास के असंख्य रूप अपने मुंह से ध्वनियों के ज़रिए तैयार करते हैं और अलग–अलग परिस्थितियों में उन अलग–अलग विन्यासों का इस्तेमाल करके सुननेवालों के मन में भाव और विचार पैदा कर पाते हैं, तो एक ख़ासा बड़ा विवेचना ग्रंथ तैयार हो जाएगा। वह आयु जिसमें एक बालक भाषा का 90 प्रतिशत से ज़्यादा सीख लेता है, ऐसी आयु होती है जब इस विवेचना ग्रंथ को पढ़ने की शक्ति किसी बालक में नहीं होती। दो ढाई साल की उम्र तक भाषा के इस जगत् का एक बहुत बड़ा हिस्सा साधारण बालक को प्राप्त हो जाता है। कैसे प्राप्त हो जाता है, यह अपने आपमें प्रकृति का चमत्कार या कौतूहल का विषय है। जो भी औपचारिक शब्द आप इसको देना चाहें दे लीजिए पर जिसको हम अकथ ज्ञान कहते हैं, जो तमाम क़िस्म के कौशलों में निहित होता है, इसी क़िस्म का ज्ञान है। वह ज्ञान चाहे किसी सुंदर मूर्ति को बनाने का ज्ञान हो या किसी मशीन के साथ काम करके उसे सुचारु रूप से चलाने का ज्ञान हो,

ये सभी ज्ञान ऐसे हैं जो हमें सहभागिता से प्राप्त होते हैं। सुनकर या पढ़कर ज्ञान की राशि के रूप में ये ज्ञान हमें प्राप्त नहीं हो सकते। इस तरह के ज्ञान हमसे ये मांग करते हैं कि हम किसी ऐसे व्यक्ति के साथ जिएं जो पहले से इस ज्ञान का मालिक हो। उस व्यक्ति के साथ जीते हुए, उसके साथ काम करके हम वह ज्ञान सीख जाते हैं। पारंपरिक शब्दावली में इस प्रक्रिया को अनुकरण कहा जाता है। अनुकरण से आशय यह है कि जो किसी ने किया, वही करना है। दुर्भाग्यवश आज के समय में शब्दों का सहज अनुवाद हमारे जीवन की विशेषता हो गई है। अनुकरण को हम लोग नक़ल का नाम देते हैं। दरअसल नक़ल और अनुकरण अलग–अलग चीज़ें हैं।

अनुकरण किसी व्यक्ति के साथ जीते हुए उस व्यक्ति के काम को यथासंभव स्वयं करने की इच्छा से आविष्ट होने का नाम है। ज्ञान का अकथ आयाम हमें इसी प्रक्रिया से प्राप्त होता है। शिक्षक के सामने एक बड़ी चुनौती यही है कि जो ज्ञान उसको स्कूली जीवन के एकदम आरंभिक दिनों में देना होता है, वह इसी क़िस्म का ज्ञान है। जिसे पढ़ने लिखने का कौशल कहते हैं, इसी कौशल में सब तरह की विद्या पाने की कुंजी छिपी है। बाद में बहुत सी कुंजियां बालकों को मिलती हैं, पर यह सबसे बड़ी कुंजी है जो जीवन में सबसे पहले प्राप्त करनी होती है। यह कुंजी शिक्षक बच्चे को कैसे दे? पढ़ने–लिखने का कौशल कहकर या बताकर नहीं दिया जा सकता। यह अकथ ज्ञान की श्रेणी में आता है। शिक्षक के सामने एक बड़ी भारी समस्या होती है। हर व्यक्ति जो पढ़ना जानता है, उसके लिए पढ़ना सिखाने का आशय तब तक नहीं खुल सकता जब तक वह स्वयं पांच वर्ष के एक बालक के साथ बैठकर पढ़ना सिखाने की शुरुआत न करें कोई दूसरा इस काम की जटिलता को नहीं समझ सकता। शिक्षा नीति के निर्माताओं को यह सब नहीं मालूम होता कि एक बच्चे को पढ़ना सिखा देना कितनी जटिल और संघर्षमय प्रक्रिया होती है। शिक्षा मंत्रालय जैसी जगह पर काम करनेवाले व्यक्ति को इस बात का ज्ञान नहीं होता।

एक अन्य तरह का ज्ञान जिनमें प्रतीकों के माध्यम से अनुभव जगत् से जुड़ने का और स्वयं के अनुभवों पर विचार करने का अवसर मिलता है, स्कूली व्यवस्था नहीं दे पाती। ऐसा क्यों नहीं हो पाता? मैं अक्सर इस उत्सुकता से आविष्ट रहता हूं कि मैं जिस स्थान पर गया हूं चाहे वह कितना ही छोटा कोई स्थान हो, वहां जाकर देखूं कि उस स्थान के बगल में स्थित स्कूल में क्या हो रहा है। कोई दो महीने पहले मैं अमरकंटक में था। जहां गुलबकावली नाम का एक विशिष्ट फूल पाया जाता है जिसका ज़िक्र क़िस्सा हातिमताई में हुआ है। आपमें से जिन लोगों ने हातिमताई का क़िस्सा पढ़ा है, उन्हें याद होगा कि हातिमताई, जो एक बहुत साहसी नौजवान था, वह कैसे अपने राजा की आंखों को ठीक करने के लिए इस फूल को ढूंढ़ने निकला था। उस कहानी में लिखा हुआ है कि पहाड़ियों से घिरी हुई कोई जगह है, जहां पर यह फूल उगता है। यह नहीं लिखा है कि जगह कौन सी है? संभव है, यह जगह अमरकंटक रही हो। अमरकंटक में यह फूल उगता है, हालांकि फूल को लेकर यह निश्चित नहीं है कि फूल कहां से आया। आप इसके अर्थ पर विचार करें–बकावली यानी बगुलों की पंक्ति। इस फूल की क्यारियां बगुलों की पंक्ति जैसी दिखती है और कोई विचित्र ही बात है कि यह फूल सिर्फ़ सोन और नर्मदा के उद्‌गम स्थल में अर्थात अमरकंटक में ही दिखाई देता है। शायद डंकल प्रस्ताव लागू होने के साथ ही यह फूल अब अमरकंटक में ही नहीं रहेगा, बल्कि दुनियाभर में फैल जाएगा। इस फूल के अर्क से आंखों की तकलीफ़ ठीक होती है, इसलिए इसको ख़रीदने के लिए हमें बहुत सी राशि विदेशी मुद्रा के रूप में अर्जित करनी होगी। विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए हम अपने देश में उगाए गए सूत से जीन्स बना–बना भेजेंगे और हमारी असंख्य महिलाएं विदेश से आयात की गई मशीनों पर तरह–तरह के कपड़े सिलकर विदेशों में भेजा करेंगी। तब जाकर हम गुलबकावली का अर्क प्राप्त कर सकेंगे। अमरकंटक में तीन स्कूल चलते हैं। तीनों ही स्कूलों में मैंने अपनी इस जिज्ञासा का समाधान करना चाहा कि क्या बच्चे गुलबकावली की विशेषता से परिचित हैं। गुलबकावली अमरकंटक की गली–गली में दिखता है। वहां वैद्य इस फूल का अर्क बेचते हैं, शहद हैं। नेत्र रोग से पीड़ित मनुष्य को अमरकंटक पहंच कर लगता है कि अब वह स्थान आ गया है जहां से मैं

दृष्टि प्राप्त करके जाऊंगा। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि दुख होगा या क्या होगा, लेकिन इन तीनों में से किसी स्कूल में एक भी बच्चे को मैं नहीं ढूंढ़ सका जिसने यह सुना हो कि गुलबकावली फूल हातिमताई के क़िस्से में आया है, या कि वह जानता हो कि यह फूल किस मौसम में उगता है, यद्यपि ये बच्चे प्रतिदिन इस फूल को स्कूल जाते हुए देखते हैं। जहां–जहां उसकी क्यारियां है, वहां पर वर्ष के अलग–अलग हिस्सों में उन्होंने यह अवश्य देखा होगा कि फूल कब खिलता है। ज़ाहिर है कि हमारी परंपरा में जो चार आंतरिक इंद्रियां कही गई हैं– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार– उनमें से चित में गुलबकावली प्रवेश नहीं कर सकी है। वरना वह बच्चों की चेतना में अवश्य होती। वह उनके चारों ओर खिला हुआ है लेकिन पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं है, इसलिए हुआ करे एक विलक्षण फूल, दिया करे लाखों लोगों को ज्योति, लेकिन वह हमारे अमरकंटक के प्राथमिक या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में ज्योति नहीं दे सकता।

आप देश के किसी भी हिस्से में चले जाइए, चाहे कोवलम नाम के केरल के ख़ूबसूरत समुद्र तट के किनारे चलती हुई पाठशाला में चले जाइए या ओरछा के प्रसिद्ध मंदिर के पीछे लगी हुई प्राथमिक शाला में चले जाइए या दिल्ली में हौजख़ास नाम के गांव में, जिसको मध्य युग में बसाया गया था, और जिसके खंडहर देखने दूर–दूर से पर्यटक आते हैं, उसके बगल में चलनेवाली प्राथमिक शाला में चले जाइए। अपने क़रीब स्थित दृश्यावली, अपने करीब स्थित प्रतीक और ज्ञान के तमाम स्रोतों की अवहेलना आपको हर जगह मिलेगी। यह बात मैं केवल चौंकाने लिए नहीं कह रहा हूं, क्योंकि इस बात से चौंकाने का मेरे लिए विशेष महत्त्व नहीं है। मैं इसको लेकर कोई बीस साल से खुद चौंकता चला आ रहा हूं। इसलिए मैं चोंकने और चौंकाने दोनों ही सुखों का उपभोग करने में अपने को असमर्थ पाता हूं। कैसी वह शिक्षा है जो हमें दूरदर्शन के प्रति तो इतना संज़ीदा बनाती है, लेकिन समीपदर्शन की कोई प्रेरणा नहीं देती?

हमारी सारी की सारी व्यवस्था इसी बात पर टिकी है कि हम इस विराट दुनिया का कितना ज्ञान जानते हैं लेकिन हम अपने क़रीब के दस पौधों को पहचान सकें, अपने माता–पिता के अतीत को जान सकें, अपने आंगन में आनेवाले दो–चार पक्षियों का जीवन–क्रम जानते हों, इतना सहज सा ज्ञान जिसमें हमारी जानने की प्रक्रिया कर्म बनती हो, ऐसा अनुभव हमारी स्कूली शिक्षा नहीं दे पाती। यह मामूली सी चीज़ है, इसमें कोई ख़ास रहस्य की बात नहीं है, लेकिन आप जितना इस विषय में सोचेंगे, उतना ही महसूस करेंगे कि यही शायद हमारी शिक्षा व्यवस्था की केंद्रीय कमज़ोरी है कि वह ज्ञान को कभी बच्चे का अनुभव नहीं बनने देती।

ज्ञान को अनुभव बनाना तभी संभव है जब वह निर्जीव या जीवित चीज़ों के संपर्क से पैदा हो। इस संपर्क की इच्छा बच्चे में पैदा करने की आवश्यकता नहीं है। आनंद की बात यह है कि बच्चा जब जन्म लेता है तो यह इच्छा उसमें स्वाभाविक रूप से होती है। वह अपने आसपास के निर्जीव और सजीव दोनों क़िस्म के जगत् को स्वयं जानना–समझना चाहता है।

यह इच्छा उसमें पहले से होती है, इसीलिए वह चीज़ों को छूता है, तोड़ता है, उलटता है, पलटता है, लोगों के साथ बात करना चाहता है और उनकी बात सुनता है। ये सारी इच्छाएं उसके स्वभाव में हैं, इनको देने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है अगर किसी बात की तो यही है कि इस स्वभाव को स्वाभाविक वृत्ति को अभिव्यक्ति मिल सके और बच्चे के आसपास जो दृश्यावली है, जो निर्जीव और जीवित जगत् है, इस जगत् को परत–दर–परत खोलने की सामर्थ्य बच्चे को मिल सके और खोलने का समय मिल सके। यह एक स्नेहशील व्यक्ति के सामीप्य में हो जो स्वयं इस प्रक्रिया में आनंद लेता हो। बस, इतनी सी बात है। लेकिन हम देखते हैं कि इस सहज बात को समझना हमारी शिक्षा व्यवस्था में संभव नहीं रह गया है। हम जितना आगे बढ़ते हैं और जितना नई नीतियों, नए उपक्रमों की ओर आगे बढ़ते हैं, वैसे–वैसे हम देखते हैं कि यह सहज बात दृष्टि से ओझल होती चली जाती है। हम नई–नई तकनीकों, नई–नई शब्दावलियों के भ्रम में ढलते चले जाते हैं।

कृष्णकुमार– एनसीईआरटी के निदेशक। स्कूली शिक्षा पर निरंतर लेखन एवं चिंतन करते हैं।